# अस्मिता में छिपी संभावना

'अस्मिता' की बात में लोगों को अपनी ओर खींचने की अद्‌भुत शक्ति है। इसी के साथ 'अस्मिता' की अवधारणा बेहद व्यापक और लचीली भी है। 'अस्मिता' से जुड़ी ये दो बातें 'अस्मिता' की अवधारणा पर तर्कसम्मत ढंग से विचार करने के लिए बाध्य करती हैं। खासकर जब लोग 'अस्मिता' को भाषा, जाति, धर्म या फिर संस्कृति के आधार पर टुकड़ों में बांटकर देखते हैं और अपने समूह की अलग पहचान बनाने के लिए अस्मिता की रक्षा का नारा लगाने लगते हैं तब समाज की अखंडता सुरक्षित रखने के लिए 'अस्मिता' की अवधारणा पर गहराई से विचार करना जरूरी हो जाता है।

अस्मिता के लिए शब्दकोश में अहं, अहंकार, अस्तित्व, विद्यमानता और हक शब्द मिलते हैं। अहं तथा अहंकार शब्दों में आत्मबद्धता और आत्मश्रेष्ठता का भाव छिपा है, जो दूसरों के महत्व को कम करके आंकता है। 'अस्तित्व' का प्रमाण तो आँखों से मिलता है और 'अस्मिता' का संबंध ऐहसास से है। इसलिए 'अस्तित्व' का अर्थ 'अस्तित्व' या 'विद्यमानता' से कहीं ज्यादा सूक्ष्म है। अब रहा सवाल हक या अधिकार का। 'अस्मिता' को हक मानने के साथ ही इसकी रक्षा के लिए संघर्ष को भी जरूरी माना जाने लगता है। सामाजिक स्तर पर अस्मिता-रक्षा की लड़ाई अक्सर मनुष्य को जाति, धर्म, संस्कृति, भाषा, लिंग के आधार पर समूहों में बांटने पर आधारित होती है और एक समूह दूसरे समूह से खुद को अलगाता हुआ नजर आता है। हर समूह अपने विचार, अपना दर्द और अपनी विशिष्टताओं को महत्व देता है और अपनी अलग पहचान बनाने की लड़ाई लड़ता है। भाषाई अस्मिता, सांस्कृतिक अस्मिता, स्त्री अस्मिता की प्रतिष्ठा की लड़ाई ऐसी ही लड़ाई है। भारतीय समाज में अस्मिता का यह रूप देखा जा सकता है। अस्मिता के इस रूप के चलते क्षेत्रीयतावाद, जातिवाद, सांप्रदायिकता, स्त्रीवाद, भाषा संबंधी संकीर्ण विचार सिर उठाने लगते हैं और समाज में अलगाववाद को बढ़ावा मिलता है। शब्दकोश में अस्मिता के लिए मोह और भ्रम शब्द भी मिलते हैं। अस्मिता के लिए प्रचलित एकाधिक भिन्न अर्थ वाले शब्दों से 'अस्मिता' की अवधारणा के लचीलेपन का ऐहसास भली भांति हो जाता है। गौर करने लायक बात यह है कि अस्मिता के प्रति सचेतनता लोगों को क्रियाशील बनाने की ताकत रखती है। इस ताकतवर अवधारणा की नकारात्मक व्याख्या जहाँ समाज में दरारें पैदा कर सकती हैं वहीं इसकी सकारात्मक व्याख्या समाज के वर्तमान एवं भविष्य को उज्जवल भी बना सकती है। अतः 'अस्मिता' की अवधारणा पर गंभीरता से विचार करने की बात की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

आज धर्म, जाति, भाषा जैसे एकाधिक आधारों पर बने गुटों की अस्मिता की रक्षा का सवाल भारत की एकता और अखंडता के लिए घातक साबित हो रहा है। ऐसे में लोगों को एकता के सूत्र में पिरोकर रखनेवाले आधार से 'अस्मिता' को जोड़कर उसे विकसित करने की बात पर जोर देना और इसके विकास के सवाल को स्वस्थ उद्देश्य से भी जोड़ना जरूरी है। साथ ही अपने-अपने समूहों की अस्मिता की रक्षा के लिए किसी भी हद तक जाने को तत्पर लोगों को इस बात का ऐहसास दिलाना भी जरूरी है कि अस्मिता छीनी नहीं जा सकती और न ही नारे लगाकर इसे प्रतिष्ठित या साबित किया जा सकता है। सामाजिक उन्नति के लिए समूह विशेष की अस्मिता की रक्षा का नारा लगाने के बजाय व्यक्ति की अस्मिता के विकास के मुद्दे पर जोर देना जरूरी है। व्यक्ति की अस्मिता के विकास का प्रश्न व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लक्ष्य के साथ जोड़ा जाना चाहिए। व्यक्ति को सतर्क रहकर 'अस्मिता' का विकास करना पड़ता है। इसमें परिवेश के प्रति सचेतनता, समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति तथा जीवन के प्रति तर्कशील और उदार दृष्टि, सामाजिक तथा व्यक्तिगत स्तर पर स्वस्थ संबंध तैयार करने की योग्यता, जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि, प्रतिकूल परिस्थितियों में आगे बढ़ने की क्षमता, सहयोगी भाव, सकारात्मक मूल्यों को अपने जीवन में ढालने का संस्कार, जीवन और समाज से संबंधित समस्याओं के लिए नए विकल्प खोजने की ताकत, नए विचारों को प्रतिष्ठित करने का साहस, अपने विचारों को

स्पष्ट ढंग से संप्रेषित करने की योग्यता तथा आत्मपरीक्षण और आत्मालोचना जैसी तमाम बातें शामिल हैं। अस्मिता के ऐसे विकास से मनुष्य को धन, संपत्ति, सुख-सुविधाएं भोगने के बजाय सामूहिक रूप से कर्मशील जीवन जीने में ही आनंद आने लगता है। मनुष्य के ये गुण मनुष्य के व्यक्तित्व का अंग बनकर उसके व्यवहार में झलकते हैं। इसी को अमर्त्य सेन ने 'पहचान से प्रभावित व्यवहार' कहा है। उपर्युक्त गुणों के विकास के साथ विकसित होने वाली अस्मिता व्यक्ति के व्यक्तित्व का अंग बनकर समाज में उसकी एक अलग पहचान बनाती है। इसलिए अमर्त्य सेन द्वारा 'पहचान' के संदर्भ में कही गई बात 'अस्मिता' के संदर्भ में भी चरितार्थ होती है। 'अस्मिता' के इस रूप को सकारात्मक गुणों के समावेश पर आधारित होने के कारण 'समावेशी अस्मिता' कहा जा सकता है। यह अस्मिता व्यक्ति में एक अंतर्दृष्टि पैदा करती है। यह अंतर्दृष्टि संकीर्णताओं से टकराने की ताकत रखती है। दरअसल समावेशी अस्मिता व्यक्ति के दृष्टि, विचारों और गुणों के गुणात्मक फल से पैदा होने वाला भाव है। इस अस्मिता का विकास करना व्यक्ति के हाथों में होता है। यह सामाजिक, राजनैतिक या फिर मौलिक अधिकारों के दायरे से बाहर की चीज है। यह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। अस्मिता के ऐहसास के संबंध में गौर करने लायक बात यह है कि यह व्यक्ति के पहचान का आधार और उसके व्यवहार की धुरी बन जाने की ताकत रखती है। कदाचित् इसलिए जब अमर्त्य सेन अपनी पुस्तक 'आइडेंटिटी ऐण्ड वोयलेंस द इल्यूशन ऑफ डेस्टिनी' में व्यक्ति की पहचान को संकीर्ण बनाने वाले दो कारकों, पहला 'पहचान की अवहेलना' और दूसरा 'एकांगी संबद्धता' की बात करते हैं, तब उनकी बात अस्मिता की अवधारणा से जुड़ी हुई लगती है। आजकल प्रकाशित होने वाले 'भाषाई अस्मिता के लिए सोचे उत्तराखण्डी समाज', 'छत्तीसगढ़ी अस्मिता का प्रश्न', 'बिहारी अस्मिता की रक्षा कौन करेगा', 'मराठी अस्मिता के लिए...?' जैसे इफरात में दिखने वाले लेखों के शीर्षकों से ही यह साफ जाहिर हो जाता है कि तात्विक दृष्टि से 'अस्मिता' और 'पहचान' में भले ही अंतर हो पर व्यवहार के स्तर पर दोनों विशिष्ट रूप से संबद्ध हैं।

जहाँ तक समावेशी अस्मिता का सवाल है यह अस्मिता अपने विकास के लिए खास परिवेश की मांग करती है। यह परिवेश किसी मार्गदर्शक की स्पष्ट, अनुभवी और संवेदशील दृष्टि के आलोक में तैयार हो सकता है या फिर व्यक्ति स्वयं सतर्क भाव से अपनी अस्मिता को समावेशी बना सकता है। समावेशी अस्मिता के विकास के दौरान व्यक्ति अपने भीतर तथा बाहरी परिवेश की संकीर्णताओं से टकराता चलता है।

व्यक्ति की अस्मिता पर उसके परिवार समाज और शिक्षा से प्राप्त मूल्यों का गहरा असर पड़ता है। लेकिन समावेशी अस्मिता से भरी एक पूरी पीढ़ी तैयार करने का व्यवस्थित प्रयास शिक्षण संस्थानों के जरिए ही बेहतर ढंग से किया जा सकता है। व्यापक स्तर पर नए मूल्यों के सृजन के लिए अधिकांश परिवारों या फिर समाज के अधिकांश लोगों को प्रोत्साहित कर पाने की कोई व्यवस्थित राह नहीं है। लेकिन शिक्षा से जब नई पीढ़ी में समावेशी अस्मिता विकसित होगी तब पारिवारिक तथा सामाजिक स्तर पर इसका प्रभाव स्वाभाविक तौर पर दिखाई देगा।

समावेशी अस्मिता के विकास का सतर्क प्रयास विद्यालय से ही प्रारंभ होना चाहिए। समावेशी अस्मिता का विकास साहित्य, गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र जैसे विषयों की तरह किसी खास विषय की पढ़ाई की मांग नहीं करता। बल्कि यह विद्यालय में पढ़ाए जाने वाले आम विषयों से छात्रों में उनके जीवन और समाज के प्रति एक दृष्टि पैदा करने की मांग करता है। ऐसी दृष्टि जो अपने जीवन और समाज के विकास के लिए उपयोगी तरीके विकसित करने की योग्यता दे। इस तरह देखें तो विद्यालय स्तर से समावेशी अस्मिता के विकास के लिए प्रयास का मुद्दा दरअसल आम विषयों को ही खास रवैये से पढ़ाने से संबंधित है। समावेशी अस्मिता के विकास के उद्देश्य से प्रेरित शिक्षा नई पीढ़ी के चिंतन की दिशा बदल सकती है। आज की नई पीढ़ी नौकरी के लिए शिक्षा को आवश्यक समझती है। नौकरी पाने के लिए शिक्षा प्राप्त करने की होड़ में विद्यार्थी एक दूसरे के सहयोगी बनने के बजाय प्रतिद्वंद्वी बन बैठते हैं। साथ ही संकीर्ण मानसिकता तथा व्यक्तिवादिता उनके

भीतर घर बनाने लगती है। इसे स्वकेंद्रित विकास की मानसिकता कहा जा सकता है। इसी मानसिकता से असुरक्षा भाव पनपता है। क्योंकि व्यक्तिवादिता व्यक्ति में किसी के प्रति विश्वास और बिना वजह किसी का विश्वास पात्र बनने की खूबी को पैदा ही नहीं होने देती। व्यक्ति अपने परिवार और कई बार अपने से इतर किसी की समस्या को महसूस ही नहीं कर पाता। तब वह अपने भविष्य को सुरक्षित बनाने के लिए पूंजी बटोरने को आवश्यक समझता है। तब शिक्षा उसके लिए पूंजी बटोरने की योग्यता हासिल करने का साधन बन जाती है। स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी बेरोजगार बने रहने या फिर संतोषजनक रोजगार न कर पाने वाले युवा हताशा तथा असुरक्षा भाव से बाहर नहीं निकल पाते। इस तरह देखें तो शिक्षा के उद्देश्य के साथ सुरक्षा हासिल करने का एक भाव जुड़ा हुआ है। इस भाव का संबंध व्यक्तिवाद से है। इसका प्रेरणा स्रोत है भय। अपनी आजीविका न कमा पाने का भय, दूसरों द्वारा शोषित होने का भय या फिर खुद को सुरक्षा प्रदान करने वाले प्रियजनों को खोने का भय। यह भय एक विकृत पूंजीवादी मूल्य है। इस भय के साथ दो समस्याएं जुड़ी हैं। एक खुद को समाज से काटने की समस्या और दूसरा समाज को बिना वजह अपना विरोधी समझने का भ्रम। भय हमेशा कमजोरी से पैदा होता है। समावेशी अस्मिता के विकास के उद्देश्य से दी जाने वाली शिक्षा विद्यार्थियों में जीवन जीने की कला का विकास करने के साथ-साथ उनमें सामूहिक विकास की मानसिकता पैदा करेगी। इससे विद्यार्थी अपनी तथा समूह की शक्ति को महसूस कर पाएंगे। एक इतिहास का शिक्षक शिवाजी का उदाहरण देकर विद्यार्थियों को आज की परिस्थितियों के अनुरूप सामूहिक विकास के लिए नई राहें खोजने के लिए प्रेरित कर सकता है। शिक्षक शिवाजी के व्यक्तित्व की उदारता और जुझारूपन जैसे विशेषताओं को प्रेरक ढंग से उभारकर विद्यार्थियों को परिस्थिति के अनुरूप जीवन संबंधी नीतियां विकसित करने और अपनी अस्मिता के निर्माण के जरिए अपनी पहचान बनाने की प्रेरणा दे सकता है। दरअसल इतिहास की शिक्षा को अतीत की जानकारी देने तक सीमित रखना गलत है। इतिहास के जरिए विद्यार्थियों को अपने जीवन और समाज के लिए उपयोगी मूल्य चुनने की प्रेरणा दी जा सकती है। मसलन मनुष्य के पाषाण युग से लेकर धातु युग तक के विकास की कहानी के जरिए विद्यार्थियों में यह समझ पैदा की जा सकती है कि मनुष्य एक जिज्ञासु और रचनाशील प्राणी है। परिस्थितियों के अनुरूप जीवन जीने के नए ढंग का विकास करना तथा समस्याओं से जूझते हुए नई राहें खोजना उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। उसकी यही प्रवृत्ति उसके विकास का आधार है। मनुष्य होने के नाते अपने तथा समाज की समस्याओं के लिए नए विकल्प खोजना सबका कर्त्तव्य है। इसके लिए जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि एवं सार्थक जीवन जीने के उद्देश्य से प्रेरित कार्य कौशल का विकास करना होगा। ऐसी चेतना से संपन्न विद्यार्थी आगे चलकर परिस्थितियों के प्रभाव से हताश होने, पथ भ्रष्ट होने या व्यर्थ का हंगामा खड़ा करने के बजाय समस्याओं से बाहर निकलने के लिए नए विकल्प खोजने की कोशिश करेंगे।

इस बात में कोई दो राय नहीं है कि आदमी जिंदगी की परिस्थितियों से सीखी गई बातें आसानी से नहीं भूलता। ये बातें उसकी अस्मिता पर भी गहरी छाप छोड़ती हैं। प्रकृति के इस नियम को ध्यान में रखकर अगर गणित की शिक्षा दी जाए तो विद्यार्थियों को जीवन और समाज की समस्याओं से जूझने के लिए गणित की शिक्षा दी जा सकती है। मसलन विद्यार्थियों को एक निम्नमध्यवर्गीय परिवार की कहानी कहकर उसके अर्थ की सीमा को ध्यान में रखते हुए इस परिवार के एक महीने के जरूरी खर्चों की सूची बनाने का काम देने के बहाने उन्हें दैनिक जीवन की वस्तुओं को खरीदने की विधि के साथ-साथ अर्थ की सीमितता को ध्यान में रखकर प्रलोभन से भरे बाजार से जरूरी चीजें चुनने की सीख भी दी जा सकती है। इतना ही नहीं गणित पढ़ाने का यह रवैया प्राथमिक स्तर के बाद के विद्यार्थियों को निम्न मध्यवर्गीय परिवार की मजबूरियों को महसूस करने का अवसर भी दे पाएगा। इसी तरह विद्यार्थियों को एक धन संपन्न परिवार के खर्च की सूची देकर उसमें समाज सेवा के लिए थोड़ी बहुत खर्च की जगह तैयार करने का काम देने के बहाने उन्हें यह सिखाया जा सकता है कि

व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर समाज के लिए क्या कर सकता है ? दरअसल विद्यार्थियों को समाधान की मांग करने वाली समस्यामूलक परिस्थितियों में होने का ऐहसास दिलाते हुए यदि गणित सिखाया जाए तो उन्हें अपनी दृष्टि को खोजपरक बनाने और समस्या से जूझने के लिए नए विकल्प खोजने और परिस्थितियों के अनुरूप जीवन जीने का कौशल विकसित करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। लेकिन शिक्षा की इस पद्धति के विकास के लिए शिक्षकों की कार्यशालाएँ आयोजित करना जरूरी है।

विद्यार्थियों में यह समझ पैदा करना जरूरी है कि ज्ञान की परिणति जब तक कार्य रूप में न हो तब तक ज्ञान अधूरा है। विद्यालय में पढ़ाए गए आम विषयों से प्राप्त ज्ञान का प्रयोग किसी महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य को अंजाम देने के लिए कर पाना एक कला है। यह कला ज्ञान को सार्थक बनाती है। विद्यार्थियों में इस कला का विकास करने के लिए उन्हें विभिन्न विषयों से प्राप्त ज्ञान से समाज सेवा के लिए कोई योजना बनाने की छूट देनी होगी। इसके लिए एक सप्ताह में कम से कम एक कक्षा विभिन्न विषयों से अर्जित ज्ञान को ध्यान में रखकर समाज सेवा की कोई योजना तैयार करने हेतु विचार विमर्श के लिए निर्धारित होनी चाहिए। लेकिन यह कदम विभिन्न विषयों के शिक्षकों के बीच तालमेल की अपेक्षा रखता है। साथ ही यह शिक्षकों से कक्षा के लिए पाठ के चयन और उसके प्रस्तुतीकरण के दौरान सृजनशील होने और नई दृष्टि का परिचय देने की भी मांग करता है। क्योंकि शिक्षकों का रवैया ही विद्यार्थियों में नये मूल्यों का सृजन करने की आदत पैदा करेगा। शिक्षा की इस पद्धति से विद्यार्थियों की नजर विद्यालय स्तर से ही खोजपरक या शोधपरक बनेगी। इतना ही नहीं विद्यालय जीवन के अन्तिम सोपान तक आते-आते उनमें समाज सेवा से संबंधित योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने का आत्मविश्वास भी पैदा हो जायेगा। विद्यालय स्तर पर इस तरह की योजना पर काम करते हुए विद्यार्थियों को तमाम नये अनुभव प्राप्त होंगे। साथ ही उनमें हालात को देखते हुए अपनी सोच और विचारों में संशोधन करने की आदत पैदा होगी। इसके अलावा ग्रहणशीलता, शोधदृष्टि, संप्रेषणीयता, संवेदनशीलता जैसे गुण उसके व्यवहार में अभिव्यक्ति पायेंगे। गुणों का ऐसा विकास ही समावेशी अस्मिता के विकास का द्योतक है। गौर से देखें तो समावेशी अस्मिता अपने बनने की प्रक्रिया में विषयों को सम्मिलित करने पर जोर देती है। विषयों को एक दूसरे से तथा एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति या समाज से काटकर इसका विकास नहीं किया जा सकता। विषयों को सम्मिलित करने का कतई यह मतलब नहीं है कि इतिहास, गणित, भूगोल, साहित्य, भाषा के लिए अलग-अलग कक्षाएं निर्धारित न हो। बल्कि इसका आशय यह है कि इन विषयों के कुछ पाठों को पढ़ाने के बाद एक कक्षा में विद्यार्थियों के सामने आज की किसी एक समस्या को सामने रखकर उन्हें विषयों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर इससे जूझने की राहें खोजने या फिर इससे निपटने के लिए योजना तैयार करने तथा उन्हें कार्यान्वित करने हेतु प्रेरित किया जाए। इस कार्य में ऐतिहासिक घटनाओं का ज्ञान उन्हें उचितानुचित विवेक देने, गणित और विज्ञान का ज्ञान प्रयोगात्मक विवेक देने, भाषा एवं साहित्य का ज्ञान अपने विचारों को संप्रेषित करने तथा दूसरों को समझने और देखने की दृष्टि देने और भूगोल का ज्ञान कार्यस्थल के परिवेश को मद्देनजर रखते हुए कार्य को आगे बढ़ाने की समझ प्रदान करने में मददगार साबित होगा। योजना अगर सामाजिक रूढ़ियों से टकराने की हो तो साहित्य और संगीत का ज्ञान बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। दरअसल एक सफल साहित्यकार अपने साहित्य के जरिए अपने जीवन या समाज से प्राप्त अनुभव पेश करता है। अनुभव से विकसित विचार एवं संवेदनाएं नाटक, उपन्यास, कविता, कहानी, आलोचना, निबंध जैसी अलग-अलग विधाओं में अभिव्यक्त होते हैं। विद्यार्थी अगर साहित्यिक रचनाओं को साहित्यकार की सोच और युगीन हालात से जोड़कर देखें तो उन्हें एक दृष्टि मिल सकती है। ऐसी दृष्टि जो उनके लिए अपने युग की समस्याओं के आकार और घनत्व को समझने, उसे स्पष्टता से उभारने और उनसे जूझने में मददगार साबित हो सकती है। संगीत रूढ़ियों से जूझने का एक हथियार साबित हो सकता है। इसमें विरोध के प्रकाशन, आशा का संचार और प्रभावपूर्ण भावाभिव्यक्ति की अद्भुत ताकत है। लोगों तक विचारों को पहुँचाने तथा विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य के लिए

उन्हें विद्यालयों में संगीत की उचित शिक्षा दी जानी चाहिए। यह समावेशी अस्मिता के विकास का एक बहुत बड़ा साधन है।

समावेशी अस्मिता ज्यादा से ज्यादा लोगों से जुड़ने की प्रेरणा देने के साथ-साथ जीवन और समाज की समस्याओं से जूझने के लिए सामूहिक प्रयास की राह अपनाने की प्रेरणा देती है। इस तरह देखें तो सामूहिक अस्मिता का विकास व्यक्तिवाद जैसे विकृत पूंजीवादी मूल्य के लिए चुनौती साबित हो सकती है। व्यक्तिवाद को चुनौती देनेवाली एक पूरी पीढ़ी तैयार करने के लिए विद्यार्थियों को विद्यालय स्तर से ही दल के सदस्य के रूप में काम करने की शिक्षा देनी होगी। साहचर्य, सौहार्द, सहानुभूति, दूसरों के विचारों को सुनने और समझने की उदारता, संवेदनशीलता, मानवीय विवेक एवं नैतिकता मनुष्य की अस्मिता का अंग बनकर उसमें दल का सदस्य बनने की खूबी भरते हैं। दल के प्रत्येक सदस्य को यदि व्यक्ति की शक्ति तथा दल की शक्ति का ऐहसास हो तो वह दल समाज के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर सकता है। एक विज्ञान का शिक्षक परमाणु की समाज की सबसे छोटी इकाई मनुष्य से तुलना करते हुए विद्यार्थियों को परमाणु शक्ति के जरिए मनुष्य की शक्ति का ऐहसास दिला सकता है। दल की शक्ति के प्रमाण तो इतिहास में भरे पड़े हैं। शिक्षक आम विषयों के पाठों के जरिए विद्यार्थियों में चेतना पैदा करके उन्हें नए ढंग से सोचने, पारस्परिक सहयोग से योजना तैयार करने तथा उन्हें कार्यान्वित करने की दृष्टि दे सकता है। इस तरह शिक्षा सही अर्थों में देश के मानव संसाधन के विकास का आधार बन सकती है। विद्यालय से ही समावेशी अस्मिता के विकास के क्रम में विद्यार्थियों की शोधपरक दृष्टि और अर्जित ज्ञान से सामाजिक विकास संबंधी कार्य करने की दृष्टि का विकास आगे चलकर राष्ट्र को एक प्रतिभासंपन्न युवा पीढ़ी दे सकता है। इतना ही नहीं विद्यालय से बोया गया समावेशी अस्मिता का बीज स्नातक तथा स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों को सरकार के साथ मिलकर सामाजिक विकास के योजनाओं को कार्यान्वित करने की क्षमता भी देगा। समावेशी अस्मिता से प्रेरित शोधपरक दृष्टि विश्वविद्यालयों में होने वाले शोध कार्यो को भी सामाजिक विकास में सहायक बनने की भूमिका अदा करने की प्रेरणा देगी। शिक्षा के उद्देश्य को समावेशी अस्मिता के विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास संबंधी गतिविधियों से जोड़ने के लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों के बीच एक नेटवर्क तैयार किया जा सकता है। यह कार्य निश्चित रूप से कार्यशालाओं के आयोजन की अपेक्षा रखता है।

समावेशी अस्मिता के विकास में 'चुनाव' और 'तर्क' एक बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं। अमर्त्य सेन ने अपनी पुस्तक 'आइडेंटिटी ऐण्ड वोयलेंस द इल्यूशन ऑफ डेस्टिनी' में इन्हीं को मनुष्य जीवन की धुरी माना है। उनके शब्दों में 'मनुष्य के जीवन में दरअसल उसकी तर्कशीलता और चुनने का दायित्व ही प्रमुख भूमिका निभाते हैं।' समावेशी अस्मिता के विकास के दौरान विद्यार्थी अपनी क्षमता तथा समाज के प्रति अपने दायित्व को महसूस करते हुए अपनी अस्मिता के विकास के लिए खुराक चुनता है। यह चुनाव विद्यार्थियों के व्यक्तित्व तथा जीवन-कौशल के विकास में गहरी छाप छोड़ता है। यह शिक्षक का दायित्व बनता है कि वह विद्यार्थियों को चुनने की स्वतंत्रता देने के साथ-साथ भटकने से बचने की तर्कदृष्टि भी दे। अस्मिता के ऐसे विकास से विद्यार्थियों का जीवन दर्शन तैयार होगा। इस जीवन दर्शन के आलोक में वे आगे चलकर समाज को एक नई दिशा दे सकते हैं। शिक्षा अगर विद्यार्थियों को जीवन दर्शन दे पाने में असमर्थ हो तो युवा पीढ़ी में छिपी संभावनाएं विकसित नहीं हो पाती। अतः स्नातक या स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा पाने के बाद भी नौकरी न पाने की स्थिति में अधिकतर युवा या तो हताशा का शिकार हो जाते हैं या फिर पथभ्रष्ट होकर जीवन और समाज को दूषित करते हैं। उन्हें यह सूझता ही नहीं कि बाजार के शर्तों पर खरा न उतर पाने के कारण भले ही नौकरी न मिले पर आगे बढ़ने के कई रास्ते हैं। बेरोजगार युवा संगठित होकर सरकार तथा गैर सरकारी संगठनों की मदद से अपने जीवन और समाज के लिए बहुत कुछ कर सकते हैं। इसके लिए व्यवहारिक सोच और राहों की समझ आवश्यक है। यह समझ किसी अनुभवी व्यक्ति से हासिल की जा सकती है। दरअसल ऐसा कदम उठाने के

लिए युवा पीढ़ी में अपने भीतर छिपी संभावनाओं का ऐहसास होना जरूरी है। समावेशी अस्मिता के प्रभाव से विकसित जीवन दर्शन उन्हें इस बात का ऐहसास दिला सकता है।

सांप्रदायिकता, आतंकवाद, जातिवाद, भ्रष्टाचार जैसी तमाम समस्याएं व्यक्ति की संकीर्ण मानसिकता के दम पर टिकी हुई हैं। घृणा इन समस्याओं को बढ़ावा देने वालों का अस्त्र है। संकीर्ण विचारों के प्रचारक इस अस्त्र का प्रयोग व्यक्ति की अस्मिता संबंधी धारणा को अपनी स्वार्थ सिद्धि के अनुरूप ढालने के लिए करते हैं। इसके लिए अक्सर व्यक्ति को अपनी अस्मिता को किसी विशेष वर्ण, जाति, धर्म या फिर भाषा से जोड़कर देखने की नसीहत दी जाती है। जिसके चलते व्यक्ति अपने से इतर किसी समूह के व्यक्ति के प्रति असहिष्णु हो जाता है। यह हिंसा के प्रचारकों की कार्य पद्धति है। इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए अमर्त्य सेन कहते हैं, 'व्यक्ति से घृणा करना आसान नहीं है। हिंसा के प्रचारक बड़ी कुशलता से उस एकांगी पहचान के भ्रम का पोषण और विकास करते हैं जो हिंसात्मक उद्देश्यों और आक्रामक रवैयों को हवा देते हैं।' गौर करें कि अगर व्यक्ति को जिंदगी की शुरूआत से ही सतर्क भाव से समावेशी अस्मिता को गढ़ने की दृष्टि दी जाए तो वह हिंसा के प्रचारकों का मोहरा बनने से बच सकता है।

अस्मिता के सकारात्मक विकास के अभाव में ही समाज में 'अस्मिता-संकट' के नारे बुलंद होते हैं। इसके चलते समाज में विखंडनात्मक शक्तियां सिर उठाती हैं। इस सवाल पर कायदे से विचार किया जाना चाहिए कि आखिर 'अस्मिता-संकट' कब पैदा होती है। दरअसल अस्तित्व के लिए संघर्ष और स्वार्थकेंद्रित दौड़ में अस्मिता के विकास के मुद्दे की उपेक्षा करने, अपने से इतर जाति, धर्म, वर्ण, लिंग या भाषा के व्यक्ति से खुद को अलगाने के लिए उनके और अपने बीच भिन्नताएं रेखांकित करने तथा अतार्किक ढंग से उनसे घृणा करने जैसी बातों से अस्मिता संकट पैदा होता है। अस्मिता के संकट में होने का या फिर अस्मिता की रक्षा का नारा लगाना दरअसल अपनी (समूह विशेष से संबंधित) अस्मिता की श्रेष्ठता या महत्व को साबित करने की अंधी लड़ाई लड़ना है। समावेशी अस्मिता व्यक्ति का ध्यान किसी अनावश्यक होड़ या लड़ाई की ओर जाने ही नहीं देती। वह व्यक्ति को अपने विकास के साथ-साथ जरूरतमंदों के विकास की बात भी सोचने के लिए प्रेरित करती है। वह व्यक्ति में शोधपरक दृष्टि से नई राह खोजने और उस पर चलते हुए प्राप्त अनुभवों में जरूरतमंदो को राह दिखाने की प्रवृत्ति पैदा करती है। इस अस्मिता के प्रभाव से व्यक्ति को नए मूल्यों के सृजन, नई राहों की खोज, कठिनाइयों से मुकाबला करने, लोगों से जुड़ने, जरूरतमंदो की मदद करने और कर्मशील जीवन जीने में ही आनंद आने लगता है। अस्मिता का यह रूप किसी भी मान्यता की अपेक्षा नहीं रखता। इसके लिए अस्मिता को एक विकासशील अवधारणा मानकर इसके विकास के लिए सतर्क प्रयास किया जाना चाहिए। तभी चेतना संपन्न व्यक्तित्वों का जन्म हो पाना संभव है। एरिकसन ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्तित्व की निर्माण प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए कहा है, 'पहचान या अस्मिता के विकास की प्रक्रिया में निरंतर आत्मा के स्तर पर चिंतन और परिक्षण की प्रक्रिया घटित होती है। यह प्रक्रिया हर स्तर की मानसिक क्रिया में घटित होती है।' गौर करें कि लगातार चिंतन और निरीक्षण से व्यक्ति की अस्मिता समृद्ध होती है, जो उसके व्यक्तित्व को गढ़ने का काम करती है। विद्यालय स्तर से ही विद्यार्थियों में ऐसे व्यक्तित्व का बीज डालने के लिए विद्यार्थियों को खास ढंग से तैयार करने के अलावा शिक्षा के हर स्तर पर उचित मूल्यांकन प्रणाली का होना जरूरी है। ताकि विद्यार्थियों को अपने अस्मिता को समावेशी बनाने का उत्साह मिल सके। इतना ही नहीं नौकरी के क्षेत्र में भी खासकर सरकारी क्षेत्रों में समावेशी अस्मिता से प्रेरित व्यक्तियों के लिए हर स्तर पर कुछ पद आरक्षित होने चाहिए। उनकी समावेशी अस्मिता का प्रमाण उनके द्वारा किए गए समाजसेवामूलक कार्यों से मिल सकता है। नियुक्ति का फैसला निश्चित रूप से इन कार्यों की सामाजिक महत्ता की जांच पर निर्भर करेगा।

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि समावेशी अस्मिता एक चेतना संपन्न व्यक्तित्व तैयार कर सकती है। ऐसा व्यक्तित्व जो सामाजिक विकास में सहायक नसों को पहचानने के साथ-साथ समाज में कार्यरत

प्रतिगामी शक्तियों को भी पहचान सके। साथ ही प्रतिरोधी शक्तियों से जूझने का व्यवहारिक उपाय भी खोज सके। इन शक्तियों से टकराते हुए समावेशी अस्मिता से संवलित व्यक्ति लोगों में नए ढंग से सोचने की प्रवृत्ति पैदा करता चलता है। साथ ही वह नई सोच को प्रतिष्ठित करने के लिए प्रचलित रूढ़िग्रस्त मतों से संघर्ष भी करता है। इस पूरी प्रक्रिया के दौरान वह ज्यादा से ज्यादा लोगों को अपने साथ जोड़ते हुए चलता है। और दूसरों के समृद्ध विचारों को तर्कसम्मत ढंग से अपनाकर अपनी सोच को भी विकसित करता है। इस तरह देखें तो समावेशी अस्मिता व्यक्ति को एक समृद्ध जीवन दर्शन देती है। ऐसा दर्शन जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़े और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा को साकार करे।